जैन - दर्शन में अरिहन्त का स्थान

(साध्वी डॉ. दिव्यप्रभाजी एम.ए., पीएच.डी.)

जैन-दर्शन में "अरिहंत" राग-द्वेष, काम, भय, हास्य, शोकादि दोष से रहित होने से वीतराग तथा अनन्तज्ञान एवं दर्शन से युक्त होने से सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, अष्ट महाप्रतिहार्य समवसरण सुवर्णकमल आदि द्वारा देवों से पूजनीय होने से "अरिहन्त" राग-द्वेष पर विजय पाने से जिन, अज्ञानसागर से तैरने के कारण तीर्ण, केवलज्ञान प्राप्त करने से बुद्ध तथा घातीकर्म से रहित होने से मुक्त माने गये हैं।

अरिहन्त को जैन-दर्शन में भगवान भी कहते हैं क्योंकि १-समग्र ऐश्वर्य, २-रूप, ३-यश, ४-श्री, ५- धर्म एवं ६-प्रयत्न ये छः अर्थ जो "भग" के हैं, इनमें पाये जाते हैं। ललित विस्तार के अनुसार "अयमेवंभूतो भगोविद्यते येषां ते भगवन्तः ॥" अर्थात् छः प्रकारों का "भग" जिन्हें प्राप्त हैं वैसे अरिहन्त देव भगवान् कहलाते हैं।

अरिहन्त को तीर्थ रचने के स्वभाव वाले होने से तीर्थंकर कहते हैं तथा राग-द्वेष विषय कषायादि मल से रहित होने से परमात्मा भी कहते हैं।

इस प्रकार जैन-दर्शन में "अरिहन्त" का विशिष्ट स्थान है। पंचपरमेष्ठि पद में "नमो अरिहन्ताणं" पद के अधिष्ठाता ये ही अरिहन्त भगवन्त हैं।

जैन-दर्शन की महती विशिष्टता यही है कि जैन-दर्शन में लाक्षणिकता से ही व्यक्ति परमात्मा होता है। सामान्य से सामान्य स्थिति में जीवन व्यतीत करने वाली आत्मा भी प्रयत्न के पश्चात् परमात्मा बनने में समर्थ हो सकती है।

जैन दर्शन के अनुसार अनन्तानंत परमाणुओं के बने हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के सजातीय स्कन्ध हैं। उनका समुदाय, विविध वर्गणाएं हैं। उनमें कार्मण-वर्गणा के नाम से पहचानी जाने वाली वर्गणा को संसारी जीव कषाय और योग द्वारा ग्रहण कर आत्मसात् करता है तब वह वर्गणा कर्मरूप से पहचानी जाती है। उसके मुख्य आठ प्रकार हैं: उनमें एक का नाम "नामकर्म" है। उसमें भी कुछ शुभ हैं और कुछ अशुभ है। शुभ "नामकर्म" में विशुद्धता की दृष्टि से जो सर्वश्रेष्ठ है उसे "तीर्थंकर नाम कर्म" कहते हैं। यह "तीर्थंकर नाम कर्म" आहारक नाम कर्म की तरह उदय के समय प्रमत्त नहीं होता, किन्तु आराधना प्रत्यनिक होता है।

"अरिहन्त की शक्ति का अचिन्त्य प्रभाव"

वीतराग में रागमात्र का अभाव होने से किसी को कुछ देने दिलाने की इच्छादिक नहीं होती तब वह स्वर्ग मोक्षादि का दाता कैसे कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में ही "शक्तिस्तस्य हि तादृशी" इस वाक्य का सर्जन हुआ। भले ही वीतराग की इच्छा का अभाव हो जाने से देने दिलाने का कोई प्रयत्न न भी हो, फिर भी उनमें ऐसी शक्ति है जिसके निमित्त से बिना इच्छा के ही उस फल की प्राप्ति स्वतः हो जाती है। इसीलिये उनको पंचसूत्र शक्रस्तव आदि में "अचिंत्तसत्तिजुत्तहिं" "अचिंतचिंतामणि" कहते हैं। साध्य की शक्ति-विशेष के प्रभाव से साधक को सिद्धि सहज मिल जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

"ऐसी शक्ति अन्य में असम्भव है"

क्योंकि इस शक्ति में उनकी साधना का अटल रहस्य है; जो दो कारणों से परिणमित है—

१. तीर्थंकर नाम कर्म का उदय एवं

२. घनघाती कर्मों का क्षय।

ललित विस्तार में कहा है कि तीर्थंकर नाम कर्म की यह विशेषता है कि इसके उदयकाल में अरिहन्त का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव होता है।

तीर्थंकर नाम कर्म (जिन नाम कर्म) नामक महापुण्य के कर्मविपाक-उदय से ऐसी शक्ति होती है जो उन्हीं में पाई जाती है, जिसमें तीर्थंकर नाम कर्म का उदय हो।

दूसरा कारण है कर्म कलंक के विनाश द्वारा स्व–दोषों की शान्ति हो जाने से आत्मा में शान्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है वह बिना इच्छा तथा किसी प्रयत्न के ही शरणागत की शान्ति का विधाता होता है। समन्त – भद्राचार्य ने स्वयंभूस्तोत्र में कहा है—

"स्वदोष शान्त्या विहितात्मशान्तिः
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवः क्लेश - भयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

अर्हत्परमात्मा ने घाती कर्मों का क्षय किया है और अपने भव-बन्धनों का छेदन किया है। अतः उनका ध्यान करने वाला ध्याता उनके ध्यान से स्वयं के भवबन्धनों के छेदन करने में समर्थ हो सकता है।

इस तीर्थंकर नाम-कर्म के पुण्य-कर्म का निकाचन पूर्व के तीसरे भव में होता है, किन्तु उपार्जन कई जन्म से होता है। इसे उपार्जित करने की मुख्य तीन साधनाएँ हैं—

१ - शुद्ध सम्यक्त्व

२ - बीस स्थानकों में से एक अथवा अनेक स्थानक की उपासना एवं आराधना

माया ममता से भरा, सारा यह संसार ।
जयन्तसेन केवट बिन, कैसे उतरे पार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ - विशिष्ट विश्वदया।

शुद्ध सम्यक्त्व - सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म इन तीन पर श्रद्धा एवं इनको इष्ट, परमइष्ट मानकर इसका उपार्जन किया जाता है। सुदेव पर इतना उत्कृष्ट अनुराग होता है कि साधक के रोम–रोम में अरिहन्त.... अरिहंत .... का गुंजार होता है। चलते, फिरते, उठते, बैठते निरंतर सतत स्मरण होना चाहिए।

बीस स्थानक और उनकी आराधना : तीर्थंकर नाम कर्म के बीस कारणों के निर्देशन हेतु निम्नलिखित गाथाएं उपलब्ध हैं—

अरिहंत सिद्ध पवयण गुरु थेरे बहुस्सुए तवस्सीसुं
वच्छलया एएसिं अभिक्खनाणोवओगे ज्ज ॥
दंसण विणय आवस्मए य सीलवए निरइयारे ।
खणत्वव तव च्चियाए वेयावच्चे समाहीए ॥
अप्पुवनाण जहणे सुयभत्ति पवयणयभावणया ॥
एएहिं कारणेहिं तित्थस्तं लहइ जीवों ॥

अर्थात् अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन, गुरु, स्थविर, बहुश्रुत और तपस्वी इन सात का वात्सल्य तथा इन चार सम्बन्धी ज्ञानोपयोगी तथा सम्यक्त्व, विनय, आवश्यक (अनुष्ठान) तथा शील और व्रत इन चार का निरतिचार (अतिचार रहित) पालन क्षणलव तपश्चर्या, त्याग, वैयावृत्य, समाधि, अपूर्वज्ञानग्रहण, श्रुत-भक्ति और प्रभावना युक्त प्रवचन इन बीस कारणों से जीवन तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है।

तीर्थंकर नाम कर्म का निकाचित बंध (निकाचन) करने के लिए इन बीस कारणों में से एक या अधिक की आराधना आवश्यक है– अनिवार्य है। इस चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान ने और श्रमण भगवान महावीर ने बीसों स्थानकों का सेवन किया है तथा शेष २२ तीर्थंकरों ने १, २, ३ तथा २० का आराधन भी किया है। कहा भी है—

"पढ़मेण पच्छिमेण य एए सव्वेवि फासिया ।
मज्झिमयएहि जिणेहिं एग दो तिण्णि सव्वेवा ॥

अभयदेवसूरि - कृत टीका के अनुसार मल्लिनाथ ने बीसों स्थानकों का आराधन किया था।

विशिष्ट विश्वदया :— "सर्व जीव करूं शासन रसी" की भावना स्वान्तः में सतत ध्यान निष्ठ होती है। जगत के जीवों को कैसे सुखी करूं ऐसी नहीं, परंतु प्राणिमात्र को मैं कैसे दुःख मुक्त करूं इसकी उत्कृष्ट भावना अन्तःकरण में सदा उदीयमान रहती है। कर्म के बंधन से युक्त आत्मा की सांसारिक दशा का निरीक्षण करते हुए करुणा के अतल सागर में निमग्न होकर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करते हैं।

"अद्भुत कला के अधिकारी"

अरिहन्त बनने की इस "अद्भुत कला के अधिकारी" के लिये निश्चित की हुई तीन स्थितियां हैं:—

१. सम्यक्त्वी २. श्रावक एवं श्राविकाएं ३. साधु एवं साध्वी–

भगवान ऋषभदेव और श्री पार्श्वनाथ स्वामी ने पूर्व से तीसरे भव में चक्रवर्तीत्व की समृद्धि एवं सुखशीलता को त्याग कर, अविचल आराधना, अटल साधना एवं निश्चल उपासना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था। भगवान महावीर ने राजनी वैभव का त्याग कर इस नामकर्म का उपार्जन किया था। राजा श्रेणिक ने सम्यक्त्व में स्थिर होकर और सुलसा, रेवती, अंबड सन्यासी आदि ने श्रावक धर्म को पालते हुए तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन एवं निकाचन किया था, तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन तो कई बार होता है परंतु निकाचन होने के बाद इसका उदय निश्चित से तीसरे भव में होता है।

यह है अरिहंत बनने की अद्भुत कला जिसे अपना कर प्रत्येक अरिहन्त, अरिहन्त बने हैं और विश्व को उन्होंने इसे दर्शा कर ऐसे पद प्राप्ति की योग्यता का दिग्दर्शन करवाया है। यद्यपि तीर्थंकर कर्म बन्धन का उपदेश नहीं करते हैं, फिर भी तीर्थंकर नामकर्म बांधने का उपदेश तो वे स्वयं करते हैं।

मधुकर मौक्तिक

ज्ञान तो सीधा सिखाया गया, पर हम उसे सीधी तरह नहीं सीख सके। जो अर्थ सीखना चाहिए, वह तो हम नहीं सीखे, पर कुछ और ही अर्थ सीख गये। शुरू से ही सारी बातें समझा दी गयी हैं; पर हमने केवल ऊपरी अर्थ ही लिया, अर्थ की गहराइयों तक हम नहीं पहुँच सके। शब्द के अर्थ के भीतर हमने प्रवेश नहीं किया। एकड़े एक, बगड़े दो... इस प्रकार शब्द क्यों जोड़े गये? किसी अन्य तरह से क्यों नहीं जोड़े गये? यदि इस पर विचार करें, तो विदित होगा कि आत्मा को ज्ञान का प्रकाश मिले, इसीलिए इस प्रकार से शब्दों की योजना बनायी गयी है। ये सब आत्मा को समाझाने के लिए है। हम ज्ञानीजनों के शब्दों पर ध्यान नहीं देते, अज्ञानियों के शब्दों पर ही ध्यान देते हैं। उनके शब्दों को पकड़ कर उलझन में पड़ जाते हैं; पर ज्ञानियों के शब्दों को पकड़ कर उलझन से बाहर निकलने का प्रयत्न नहीं करते।

– जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'

माया ममता में रहा, तज समता का हाथ ।
जयन्तसेन जग से वह, जाता खाली हाथ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org